

ठहरे-ठहरे पानी पर शाम के लम्बे साये थे, और दिन ढलने के साथ नदी खामोश होती जा रही थी। मछलियां रह रह कर पानी की सतह से उछल आती थीं तथा बड़े-बड़े पक्षी विशाल वृक्षों पर अपने बसेरों की ओर लौट रहे थे। रजत-नील आकाश में एक भी मेघ नहीं था। सवारियों से भरी एक नाव नदी से गुज़री, वे लोग गा रहे थे और हाथों से ताल देते जा रहे थे; दूर से किसी गाय के रंभाने की आवाज़ आई। वातावरण में सांझ की महक थी। गेंदे के फूलों की एक माला पानी में बही जा रही थी, और यह पानी डूबते सूरज की रोशनी में झिलमिला रहा था। कितना सुंदर, कितना जीवंत था सब कुछ--वह नदी, वे पक्षी, वे वृक्ष और वे सब गांव के लोग।

हम एक वृक्ष के तले बैठे थे, जहां से नदी नज़र आती थी। इस वृक्ष के समीप ही एक छोटा सा मंदिर था, कुछ एक दुबली गायें वहीं आस-पास घूम रही थीं। मंदिर अच्छी तरह से बुहारा हुआ, स्वच्छ था; पास ही भली-भांति सींचे गए उस फूलों वाले पौधे की देखभाल होती थी। एक आदमी संध्या की पूजा-आरती में रत था, उसकी आवाज़ धीमी और उदास थी। सूर्य की अंतिम किरणों में पानी का रंग नवजात पुष्पों जैसा था। इस बीच एक व्यक्ति हमारे पास आ गया और अपने अनुभवों के बारे में बताने लगा। उसने कहा कि अपने जीवन के कई वर्ष उसने ईश्वर की खोज को अर्पित कर दिए थे, आत्म-संयम की विविध साधनाओं का उसने अभ्यास किया था, और जो उसे प्रिय था, ऐसा बहुत कुछ उसने त्याग दिया था। उसने सामाजिक कार्य में, विद्यालय-निर्माण इत्यादि में भी भरपूर सहयोग दिया था। उसकी रुचि कई बातों में थी, पर उसकी प्रगाढ़ अभिरुचि थी ईश्वर की खोज में। इतने वर्षों के उपरांत अब उसे ईश्वर की वाणी सुनाई देने लगी थी, और अब इसी वाणी से अपने जीवन की छोटी बड़ी सभी बातों में उसे मार्ग-निर्देश मिलता था। अब उसका कोई भी कर्म अपने संकल्प से नहीं होता था, अपितु उसी आंतरिक ईश्वरीय वाणी के आदेशानुसार ही वह सारे काम करता था। किसी भी अवसर पर इस अंतर्वाणी ने उसे निराश नहीं किया, हालांकि उसकी स्पष्टता को वह प्रायः दूषित करता रहा। उसकी प्रार्थना सदैव अपनी पात्रता को शुद्ध करने की होती थी, ताकि प्राप्त करने की इसकी योग्यता कायम रहे।

क्या वह अपरिमेय आपके और मेरे द्वारा पाया जा सकता है? समय द्वारा रचित माध्यम से क्या उसे खोजा जा सकता है, जो समय के क्षेत्र का नहीं है? क्या अथर्वसायपूर्वक अभ्यास से लाया गया अनुशासन हमें अज्ञात तक ले जा सकता है? जिसका न आदि है, न अंत, उस तक पहुंचने के लिए क्या कोई साधन है? क्या हम अपनी इच्छाओं के जाल में उस यथार्थ को पकड़ सकते हैं? जो कुछ हमारे हाथ लगता है, वह ज्ञात का प्रक्षेपण ही है, किंतु अज्ञात ज्ञात के हाथ नहीं आ सकता है। जिसे कोई नाम दिया जाता है, वह तो अनभिधेय, अनाम नहीं है, और नाम देकर हम केवल संस्कारजनित प्रतिक्रियाएं ही जगा रहे होते हैं। ये प्रतिक्रियाएं, ये प्रत्युत्तर चाहे जितने श्रेष्ठ और सुखद हों, यथार्थ से उद्भूत नहीं हैं। प्रतिक्रिया हम उद्दीपनों पर व्यक्त करते हैं, पर यथार्थ कोई उद्दीपक नहीं प्रस्तुत करता है, वह तो बस होता है।

मन की गति ज्ञात से ज्ञात की ओर होती है, किंतु इसकी पहुंच अज्ञात तक नहीं है। आप किसी ऐसे विषय पर विचार नहीं कर सकते, जिसे आप जानते न हों, ऐसा करना असंभव है। आप जो भी सोचते हैं, वह ज्ञात से, अतीत से ही आता है, भले ही वह सुदूर अतीत हो या अभी-अभी बीते क्षण का अतीत हो। यह अतीत विचार ही है, जिसे अनेकों प्रभावों ने आकार और संस्कार दिए हैं, परिस्थितियों और दबावों के अनुरूप यह अपने आपमें सुधार करता रहता है, पर विचार होता हमेशा समय की प्रक्रिया ही है। विचार निषेध अथवा आग्रह मात्र कर सकता है, यह नूतन की खोज या तलाश नहीं कर सकता, पर विचार जब मौन होता है तो नूतन का प्राकट्य हो पाता है, जिसे तुरंत विचार द्वारा पुरातन में, अनुभूत में परिवर्तित कर लिया जाता है। विचार अनुभव के प्रारूप के अनुसार सदैव स्वयं को ढालता रहता है, रंगता रहता है,

अपने में कुछ-न-कुछ हेर-फेर करता रहता है। विचार का कार्य संप्रेषण है, अनुभूति की अवस्था में होना नहीं। जब अनुभूति में विराम आता है, तब विचार लगाम अपने हाथ में ले लेता है, और उस अनुभूति को ज्ञात की श्रेणी में रखने के लिए कोई संज्ञा दे दिया करता है। विचार अज्ञात को नहीं भेद सकता, इसलिए यह यथार्थ का अन्वेषण या अनुभव कभी नहीं कर पाता।

अनुशासन, त्याग, निरासक्ति, पूजा-पाठ, सदाचार का अभ्यास--ये सभी चाहे जितने श्रेष्ठ हों, विचार की प्रक्रिया ही हैं; और विचार केवल किसी लक्ष्य की दिशा में, उपलब्धि की दिशा में कार्यरत हो सकता है; उपलब्धि और लक्ष्य हमेशा ज्ञात ही होते हैं। उपलब्धि सुरक्षा है, ज्ञात की स्व-संरक्षी निश्चितता है। जो नामरहित है, उसमें सुरक्षा ढूंढना तो उसका निषेध ही है। खोजने-पाने वाली सुरक्षा तो केवल अतीत के, ज्ञात के प्रक्षेपण में होती है। इस कारण, मन को पूर्णता से, गहनता से मौन हो जाना होगा, किंतु इस मौन को त्याग, उदात्तीकरण अथवा दमन द्वारा खरीदा नहीं जा सकता। इस मौन का आगमन तब होता है, जब मन को अधिक की तलाश नहीं रह जाती, जब यह कुछ बन जाने की प्रक्रिया में नहीं उलझा होता। यह मौन संचयी नहीं है, इसे अभ्यास की प्रक्रिया द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता। यह मौन मन के लिए वैसा ही अज्ञात होना चाहिए, जैसा अज्ञात वह कालातीत है, क्योंकि यदि मन इस मौन का अनुभव कर रहा है, तो उस स्थिति में, एक अनुभवकर्ता है जो गत अनुभवों का परिणाम है, जो भूतकाल में घटित हुए मौन को पहचानता है; और जिसका अनुभव किसी अनुभवकर्ता द्वारा किया जा रहा है, वह केवल आत्म-प्रक्षेपित दोहराव ही है। मन कभी भी उस नूतन का अनुभव नहीं कर सकता, इसलिए मन को तो पूर्णतः स्थिर, निश्चल हो जाना होगा।

मन केवल तभी निश्चल हो सकता है, जब यह अनुभव न कर रहा हो, अर्थात् जब यह कोई शब्द या नाम न दे रहा हो, स्मृति में अंकित अथवा संगृहीत न कर रहा हो। कोई नाम दे देना व अंकित कर लेना केवल सतही मन की ही नहीं अपितु मन की विभिन्न परतों की अनवरत प्रक्रिया है। किंतु जब सतही मन चुप हो जाता है, तो गहरा मन अपने संकेत सूचित कर पाता है। जब समग्र चेतना मौन एवं शांत होती है, कुछ बनने की प्रक्रिया से मुक्त होती है, केवल तभी अपरिमेय अस्तित्व में आता है। इस मुक्ति, इस स्वतंत्रता को बनाए रखने की आकांक्षा कुछ बनते रहने के इच्छुक की स्मृति को निरंतरता देती है, जो यथार्थ के लिए बाधास्वरूप है। यथार्थ की कोई निरंतरता नहीं है, यह क्षण प्रति क्षण होता है, नित्यनूतन, चिरअभिनव। जिसकी निरंतरता हो, वह सर्जनात्मक कदापि नहीं है।

सतही मन तो संप्रेषण का एक उपकरण मात्र है; यह उसका परिमाण नहीं पा सकता, जो अपरिमेय है। यथार्थ कहने की बात नहीं है, और जब यह कहने की बात है, तो यथार्थ नहीं है।

यही ध्यान है।

‘कर्मद्रीज़ ऑन लिविंग’, पहला खंड, अध्याय 18